



साक्षात्कार

एक मुलाकात: सिम्मी हर्षिता से

डॉ. वैशाली सालियान
हिन्दी विभाग प्राध्यापिका
यूनिवर्सिटी इवनिंग कॉलेज मंगलूर

समकालीन समय में स्त्री हर रूपों में सामाजिक संरचना का आधार बिन्दु है। यह आधार रूप वैयक्तिक, पारिवारिक और सामाजिक है। जो स्त्री की मानसिकता को निर्धारित करते है। इसी कारण नारी सदियों से जुल्म और शोषण का शिकार होती रही है। वह विशुद्ध रूप से 'जाति' बन कर रह गई है 'वर्ग' की श्रेणी में उसे जगह नहीं मिली। अपनी अस्मिता को नयी पहचान दिलाने के लिए उसका संघर्ष बहुस्तरीय रहा है। नारी जीवन के संघर्षों का प्रमाणिक दस्तावेज समकालीन लेखिका सिम्मी हर्षिता के कथा साहित्य में चित्रित है। समग्र मध्य वर्ग के नारी जीवन के संघर्ष को केन्द्र में रखकर उसे यथार्थ रूप में स्वानुभूत कर अपने कथा साहित्य में उसकी मार्मिक अभिव्यक्ति की है। नारी जीवन संघर्षशील है और सिम्मी हर्षिता का जीवन भी। उनके कथा साहित्य का अध्ययन मैंने स्त्री- जीवन संघर्ष के परिप्रेक्ष्य में किया और इस दौरान उनसे हुई मुलाकात की झलक प्रस्तुत कर रही हूँ।

वैशाली- आपके पारिवारिक परिवेश के बारे में बताइए ?

सिम्मी- 29 नवम्बर 1940 को मेरा जन्म रावलपिण्डी के निकट देवी में हुआ, जो अब पाकिस्तान में है। मेरे दादा-परदादा किसान थे पर मेरे पिता श्री भगत सिंह को उन्होंने अच्छी शिक्षा दिलवायी। वे पढ़-लिखकर इंजीनियर बने और मिलिट्री इंजीनियरिंग सर्विस में आ गए। पिताजी बहुत अध्ययनशील थे। वे पंजाबी, उर्दू और अंग्रेज़ी भाषा के अच्छे जानकार थे, तीनों भाषाओं की हर किताब जो क्रेटा की प्रसिद्ध पब्लिक लायब्रेरी में उपलब्ध थी, उन्होंने पढ़ी थी। भारत विभाजन के बाद वे हिन्दी के महत्त्व से परिचित थे इसलिए घर पर हम बच्चों के लिए 'चन्दा मामा' और 'चुनमुन' जैसी बाल पत्रिकाएँ आती थीं। जिन्हें हम चाव से पढ़ते थे।

मैं अपनी दादी को याद करना चाहती हूँ। उन्होंने परिश्रम करके स्वयं पढ़ना-लिखना सीखा, कुछ परीक्षाएँ दीं और देवी गाँव में पहला छोटा-सा सरकारी स्कूल खोला ताकि आगे चलकर लड़कियाँ अशिक्षा और अज्ञान के अन्धकार से मुक्त हो सकें। वे देवी गाँव की सर्वप्रमुख, जागरूक और सामाजिक कार्यों में सक्रिय महिला थीं। ईश्वर में आस्था, पठन-पाठन में रुचि, परोपकार, परिश्रम और अनुशासन आदि के संस्कार तथा जीवन-मूल्यों की शिक्षा मुझे अपने परिवार से ही मिली।

वैशाली - आपको अपने भीतर छिपी लेखन-प्रतिभा का आभास कब हुआ ?

सिम्मीहर्षिता - मैं जब आठवीं कक्षा में थी, अध्यापक श्री दीनानाथ ने एक दिन सभी विद्यार्थियों से कहा- 'कल सब कविता लिखकर लाएँगे।' मैंने प्रकृति पर तुकबन्दी कर कविता लिखने की कोशिश की पर विफल रही। अगले दिन कविता लिखकर न दिखाने के कारण मुझे लड़कों के साथ दण्डस्वरूप खड़ा कर दिया गया। उस दिन सचमुच मेरी पहली कविता तैयार हो गई, जिसका शीर्षक दिया- 'इन्साफ़ करना सीख लो।' दूसरे दिन अध्यापक को मैंने कविता दिखाई, पर पढ़ने के बाद उन्होंने कोई टिप्पणी नहीं की। बाद में मेरी यह पहली काव्य-रचना, जो दानापुर में कक्षा आठवीं में लिखी गई थी, तब मेरे आगरा में जाकर दसवीं कक्षा में विद्यालयीन पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। इसके बाद तो छुटपुट कविताएँ लिखती रही पर प्रकाशनार्थ कहीं नहीं भेजा। इस तरह अभिव्यक्ति की कला या साहित्य से मेरा नाता जुड़ा और शब्दों के साथ मित्रता गहराती चली गई।

वैशाली-आपकी पहली प्रकाशित कहानी कौन-सी है, वह कहाँ छपी और उसके लेखन की प्रेरणा कहाँ से मिली ?

सिम्मी हर्षिता - कहानियाँ तो मैं हिन्दी में एम0ए0 करने के दौरान ही लिखने लगी थी और प्रकाशनार्थ भी भेजती थी। मगर सफलता मिली वर्ष 1969 में, जब 'संचेतना' पत्रिका के दसवें अंक में मेरी कहानी 'अपने-अपने दायरे' प्रकाशित हुई। इसके लेखन की प्रेरणा मुझे अपने हॉस्टल -जीवन से मिली।

वैशाली - पहली कहानी के प्रकाशन पर कैसा अनुभव किया ?

सिम्मी - वह 20 जुलाई 1969 का दिन था। मैंने अपनी डायरी में पर लिखा था- 'एक स्मरणीय, जीवन का सफल दिन- "मैं नहीं-मेरी कहानी 'अपने-अपने दायरे' का चयन हुआ है। वेरी-वेरी गुड स्टोरी..... बहुत-बहुत अच्छी कहानी है।" फ़ोन पर डॉ. महीप सिंह की यह राय सुनकर मुझे लगा मेरी हृदय गति बन्द हो जाएगी- मैं विभ्रमित-सी हो गई। मुझे लगा कि धरती सचमुच घूम रही है। अपने माता-पिता, गुरुजन और कालजयी साहित्यकारों की मुझे याद आई, जिनसे हम कितना कुछ पाते-सीखते हैं जाने-अनजाने।

जब कहानी छप गई और 'संचेतना' का अंक मेरे सामने आया तो भावावेग शान्त पड़ चुका था। प्रबुद्ध पाठकों और साहित्यकारों की प्रशंसा मिली तो लगा कि यह लेखक के बचपन की प्रशंसा है, जब बच्ची तुतलाकर भी कुछ बोले तो खूब वाहवाही होती है।

वैशाली - आपने नैतिकता की रक्षा की बात की, यह सनातनी नैतिकता है या कुछ और ? आपके उपन्यास की 'पंचकोण' की मधु किस नैतिकता की स्थापना करेगी ? 'रंगशाल' उपन्यास की कोसीना, उसके सास-ससुर और उसकी माँ मायादेवी जैसे पात्र आखिर किस तरह की नैतिकता के पैरोकार हैं ?

सिम्मी - मैंने तो कथाओं के माध्यम से समाज के एक सत्य का साक्षात्कार कराया है जिसे नकारा नहीं जा सकता। हमारे समाज में 'रंगशाला' के कोसीना और मायादेवी जैसे पात्रों की कमी नहीं। हमारे धार्मिक ग्रंथ, साधु-सन्त और बड़े-बुजुर्ग नैतिकता की सीख देते आए हैं, लेकिन नैतिकता के प्रतिमान ध्वस्त होने की कथाएँ

भी उजागर हुई हैं। 'पंचकोण' की मधु परिस्थितियों की मारी हुई है, उसमें नैतिक-अनैतिक की समझ नहीं है। वह बहुत पढ़ी-लिखी भी नहीं हैं, पर आज 'लिव इन रिलेशनशिप' में रह रही अनगिनत 'मधुएँ' हैं-वे भी इस समाज का सच हैं। नैतिकता की स्थापना एक व्यापक समाज की ज़िम्मेदारी है। आईना दिखाने का काम मैंने किया है। मुझे लगता है प्रश्न उठाना भी एक नैतिकता है।

वैशाली - आपकी अपनी लिखी पसन्दीदा कहानी कौन-सी है और क्यों ?

सिम्मी - जैसे एक माँ को अपने सभी बच्चे प्रिय होते हैं, वैसे ही 'अपने-अपने दायरे' कहानी से मेरी लेखन-यात्रा आरंभ हुई, इसलिए वह मुझे प्रिय है। पाठकों ने मेरी '33 कहानियाँ' पढ़कर अपना-अपना निर्णय सुनाया और मुझे सुखद अहसास कराया। किसी ने मेरी 'आओ बातें करें' कहानी को कालजयी बताया। जब कमलेश्वर जी ने 'बीसवीं सदी की कालजयी कहानियों' का सम्पादन करते हुए मेरी कहानी 'विस्थापित सदी' को उसमें स्थान दिया, तब मुझे पता चला कि वह इतनी महत्वपूर्ण कहानी है। इसलिए प्रबुद्ध पाठक ही सही निर्णायक होते हैं। आपने पसन्दीदा कहानी पूछी है तो मैं 'आत्मकथा का मनोभाव' कहानी का नाम लूँगी। डॉ. प्रकाश मनु ने इसे 'क्लासिक' की श्रेणी में रखा है।

वैशाली - ऐसी कोई रचना जिसे युगीन सत्य से आन्दोलित होकर आपने लिखी हो?

सिम्मी - कहानी 'विस्थापित सदी।' यह दरअसल साम्प्रदायिक दंगों से उपजे भय, घोर असुरक्षा और पहचान के संकट की कहानी है। कहानी के अन्त में विस्थापन के सम्बन्ध में उभरकर आने वाला वैश्विक दृष्टिकोण ही इस रचना को विशिष्ट बनाता है। कहानी का यह अंश देखिए-"यह सदी सारे संसार में विस्थापित है। कुछ लोगों को साम्राज्यवादी ताकतों और युद्धों ने निर्वासित कर दिया है। लोग भाग-भागकर पड़ोसी देशों में सिर छिपाये बैठे हैं और इस तरह से अपने वतन और समाज से दूर हो गए हैं। दूसरी तरह के लोग साम्प्रदायिक दुष्चक्र और आतंकवाद के कारण अपने ही देश में घर-घाट और हवा-पानी से निर्वासित हो गए हैं। अनगिनत लोग बड़े-बड़े बाँधों और औद्योगिक विकास के नाम पर विस्थापित हो गए हैं। असंख्य लोगों को डॉलरों ने निर्वासित कर दिया है। इस तरह की बढ़ती भूख और बेकारी के दबाव में हमारे मूल्य भी अपनी जड़ों से विस्थापित होते जा रहे हैं और गाँव शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं।"

निश्चित रूप से साम्प्रदायिक दंगों के दर्द को कौन भूल सकता है ? उनसे जुड़ी यादें आज भी रोंगटे खड़े कर देती हैं। उन दिनों जहाँ मैं पढ़ाती थी, वहाँ सन् 84 के सिख विरोधी दंगों का इतना गहरा असर हुआ था कि कई माता-पिताओं ने अपने छोटे-छोटे बच्चों और युवा होते लड़कों के बाल कटवाकर सुरक्षित अनुभव किया था और बाद में भी उन्होंने केशों का स्वरूप नहीं बदला। किसी भी स्वस्थ समाज और देश के लिए ऐसी असुरक्षा की भावना कितनी भयावह और त्रासद है ?

'विस्थापित सदी' के सारे प्रमुख पात्र मेरे देखे-जाने हुए हैं। कथानायक गुरजीत सिंह, राकेश, माता-पिता, लड़की और लड़के की माँ आदि सभी पात्र सुपरिचित हैं। बस, कथा की आवश्यकता के अनुरूप मैंने उन्हें गढ़ा या सँवारा है और उन्हें अपने धर्म की कट्टरतापूर्ण संकीर्ण दायरे और संकुचित दृष्टिकोण से बाहर

निकालकर व्यापक क्षितिज तक ले जाने का प्रयास किया है जिसमें मानवीय सरोकार सर्वोपरि हो और साम्प्रदायिक सद्भाव पर कोई आँच न आए।

मैंने 1984 के दंगों पर कोई कहानी नहीं लिखी, पर आतंकवाद की त्रासदी झेल रहे पंजाब के जनसाधारण की कथा अवश्य लिखी। 'विस्थापित सदी' वही कहानी है। उन दिनों लोगों के मन में सिक्खों के प्रति गहरा अविश्वास और विरोध का भाव पैठा हुआ था। किसी भी सिक्ख का पगड़ी के साथ कहीं जाना बहुत कठिन था। इसी कारण भयभीत सिक्खों ने अपने केश तक कटा दिए। मेरी कहानी 'भय के कारण वेश-परिवर्तन' इसी समस्या को उठाती है और एक साम्प्रदायिक मुद्दे पर बहुत सावधानीपूर्वक युगीन सत्य को उजागर करती है।

वैशाली - 'यातना शिविर' की दिशा को एक मज़बूत चरित्र के रूप में उभारने के बाद अंततः आत्महीन रूप में चित्रित करके आपने नारीवादियों और प्रगतिवादियों को भी घोर निराश कर दिया, क्यों ?

सिम्मी - मैंने दिशा के जीवन का कटु सत्य उपन्यास में प्रस्तुत किया है, उस पर कोई आदर्श की परत नहीं चढ़ायी। मैंने वह सब कुछ अपनी खुली आँखों से देखा, जिसे दिशा ने अपने जीवन में झेला। उस जैसी अनगिनत युवतियाँ ऐसी ही स्थितियों में जी रही हैं। फिर मैं उस दिशा को पाठकों की खुशी के लिए कैसे कोई नयी दिशा दे सकती थी, जबकि वह यातना शिविर में ही अन्तिम साँसें गिनने के लिए अभिशप्त है ?

मग नारीवादियों और प्रगतिवादियों को दिशा का परिवर्तित रूप भले न पसन्द आता होर वह सबको सोचने के लिए बाध्य करती है। समाज में परिवर्तन के लिए आशा और इच्छा जगाती है, क्या यह उसकी सफलता नहीं ? मुझे समझ में नहीं आता कि सशक्तिकरण का सवाल उठाने वाले आखिर स्त्री को किस रूप में देखना चाहते हैं ? दिशा को मैं कमज़ोर और आत्महीन नहीं मान सकती।

वैशाली - आपकी दृष्टि में नारी-मुक्ति क्या है ?

सिम्मी - साहित्य-जगत् में नारी-मुक्ति की बात जोर-शोर से होती है। स्त्रियाँ नारी-मुक्ति आन्दोलन चला रही हैं। स्त्री-विमर्श के नाम पर खूब थोथेबाज़ी हो रही है। स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को कोई नया आयाम देने या उनमें सन्तुलन स्थापित करने की बात नहीं हो रही है बल्कि स्त्री के सम्मानपूर्वक जीने की स्वतंत्रता और विवाहेतर सम्बन्धों की भी मान्यता के लिए सारी जद्दोजहद जान पड़ती है। रचनाओं में विवाहेतर सम्बन्धों का नग्न चित्रण करके लेखक भी नारी-मुक्ति की पक्षधरता साबित करने में जुट गए हैं। यदि स्त्रियाँ यह काम लेखन में करती हैं तो उन्हें पुरुषों की शाबाशी मिलती है इसलिए आज बोल्डनेस के नाम पर, नारी-मुक्ति के नाम पर साहित्य में ऐसा बहुत कुछ परोसा जा रहा है जिसकी स्वीकार्यता बहुत आसान नहीं है और नैतिकता के पैमाने पर जिसे सही नहीं ठहराया जा सकता।

आप देखिए, जो एक नारा गुंजायमान हो रहा है- 'यह देह मेरी है, मैं इसका जो चाहे करूँ।' इसका मतलब स्त्री की सोच केवल देह तक सीमित होकर रह गयी है। उसे पुरुष के समान अधिकार चाहिए देह-मुक्ति के नाम पर। पुरुष के प्रति दायित्व से भी मुक्ति चाहती है वह। देह के दलदल से तो उबर ही नहीं पा रही है, चाहे मुक्ति की वह कितनी भी बात करे। मुझे लगता है स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में सही मुक्ति है आत्मा की

मुक्ति, सड़ी-गली परम्पराओं-रूढ़ियों से मुक्ति, जीवन के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण निर्णय लेने की स्वतंत्रता। आज सारी बुराइयों की जड़ पुरुष को मान लिया गया है और ऐसा प्रचारित किया जाने लगा है कि स्त्री के जीवन में सारे दुःखों का एकमात्र कारण पुरुष ही है। जुमले उछाले जाते हैं- 'आल मैन आर बास्टर्ड' (लवलीन)। मगर यह दृष्टिकोण एकांगी है। नारी-मुक्ति के नाम पर पुरुष से मुक्ति की बात नहीं की जा रही, दैहिक स्वतन्त्रता की बात की जा रही है, जो अजीब लगती है।

वैशाली - क्या लेखन में लिंग-भेद की कोई अहमियत है ? स्त्री-लेखन, पुरुष-लेखन का नज़रिया कहाँ तक सही है ?

सिम्मी- ऐसा कोई भेद मेरी नज़र में बेमानी है। लिखने वाला सिर्फ़ लेखक होता है, स्त्री-पुरुष नहीं। ये बात ज़रूर है कि उनके लेखन की तासीर अलग हो सकती है। स्त्री और पुरुष की प्रकृति में जो भिन्नता है, चीज़ों को देखने-समझने का अपना अलग तरीका है, इसके अलावा भी बहुत-सी बातें हैं जो दोनों के भेद को परिभाषित कर देती हैं। लेकिन लेखन के धरातल पर इस भिन्नता की कोई अहमियत नहीं। रचना करते समय स्त्री हो या पुरुष-वह केवल रचनाकार होता है और उसका मूल्यांकन लिंग के आधार पर नहीं-रचना की सामर्थ्य या वैशिष्ट्य के आधार पर ही होना चाहिए। 'महिला-लेखन' और 'पुरुष लेखन' जैसा विभाजन बिलकुल उचित नहीं। इसमें 'महिला-लेखन' को कमतर आँकने की मानसिकता झलकती है-घर-गृहस्थी के अत्यन्त संकीर्ण दायरे की बू आती है।

यह भी गौरतलब है कि 'पुरुष लेखन' शब्द का प्रयोग कभी नहीं किया जाता क्योंकि वह मुख्य धारा का महत्वपूर्ण लेखन माना जाता है। केवल 'महिला-लेखन' पर ही अलग से ठप्पा लगाया जाता है। जैसे कि रेलगाड़ी में 'महिला कम्पार्टमेन्ट' होता है पर मर्द का कोई कम्पार्टमेन्ट अलग से नहीं होता। साहित्य-जगत में ऐसा भेदभाव नहीं होना चाहिए।

वैशाली- आपकी रचनाओं के केन्द्र में स्त्री पात्रों की ही प्रधानता है और सभी शोषिता, पीड़िता, उपेक्षिताएँ हैं। ऐसा क्यों ?

सिम्मी- मैंने इस दृष्टि से नहीं सोचा कभी। लेकिन आपका कहना सही है कि स्त्री पात्रों को मैंने प्रमुखता दी है। 'रंगशाला' में राधिका व कोसीना, 'सम्बन्धों के किनारे' में बाजी और हरतेज, 'यातना शिविर' में दिशा, 'जलतरंग' में सोहना और मोहना तथा 'पंचकोण' में रानी और मधु के जीवन की कथा प्रमुख रूप से उपन्यास के धरातल पर सामने आई है। मगर सभी शोषिता, पीड़िता या उपेक्षिता नहीं हैं, वे संघर्षरत हैं। हरतेज अवश्य शोषण का शिकार है, रानी को भी शोषिता माना जा सकता है। बाकी स्त्रियाँ अपनी परिस्थितियों से त्रस्त हैं।

सभी महिला पात्रों के जीवन की परिणति, पश्चाताप और विफलता में ही दर्शाने का क्या कारण है? वे संघर्ष में योद्धा की तरह जूझती हैं और सफलता के लिए पथ प्रशस्त होने के बावजूद हारकर हथियार क्यों डाल देती हैं? चाहे दिशा हो, सोहना-मोहना हो, राधिका हो या रानी?

वैशाली- मैं यह अवश्य जानना चाहूँगी कि आपने उपन्यास और कहानी-दोनों में अपनी कविताओं का समावेश किया है। इस प्रयोग के पीछे कोई विशेष प्रयोजन?

सिम्मी- मेरे लेखन की शुरुआत कविता से ही हुई थी। पर वह मेरी मूल विधा नहीं है। 'जलतरंग' उपन्यास में मेरी पन्द्रह कविताएँ सम्मिलित हैं- यह महज़ एक संयोग है। मुझे तुकबन्दी का शौक है। कभी-कभार मन में भावनाओं का ज्वार उमड़ पड़ता है और कोई कविता जन्म ले लेती है। ऐसे ही कविताएँ जमा हो गईं तो मैंने सोचा कि इनका कहीं उपयोग होना चाहिए। हिन्दी की अवहेलना, अँग्रेज़ी के वर्चस्व, युवा मन की तरंग, अवसाद आदि पर लिखी गई कविताएँ बड़ी मौजू हैं और मैंने अपने उपन्यास और कहानियों में भी उनका सार्थक ढंग से समायोजन किया है।

वैशाली- 'रंगशाला' को छोड़कर आपके शेष सभी उपन्यासों में स्त्री शिक्षा के महत्त्व और उसकी आवश्यकता को इंगित करने वाले पात्रों व प्रसंगों से हम रूबरू होते हैं, यह आपके कृतित्व की सार्थकता है। लेकिन शिक्षित होकर भी महिला अधिकारों व क़ानून के प्रति उनका अज्ञान चकित करता है। आप क्या कहेंगी ?

सिम्मी- शिक्षा आर्थिक स्वावलम्बन का आधार है, अनपढ़ या कम पढ़ी-लिखी माताएँ और दादियाँ-नानियाँ भी यह समझती हैं। यही कारण है कि मेरी रचनाओं में शिक्षा के लिए स्त्री पात्रों को प्रयत्नरत् दर्शाया गया है। वे अपने बलबूते पर खड़ी हो सकें, अपनी आजीविका के लिए उन्हें दूसरों के आगे हाथ न पसारने पड़ें-बस यही उनकी आकांक्षा है जो परिस्थितिजन्य है। इससे इतर वे सोच नहीं पातीं क्योंकि जीवन के संघर्ष उन्हें डरा-थका देते हैं। क़ानून, कोर्ट-कचहरी, थाना-पुलिस आदि की बात उनकी कल्पना से परे है क्योंकि वे आत्मविश्वास से भरी हुई आधुनिक स्त्री नहीं बल्कि परिस्थितियों की मारी हुई हैं।

वैशाली- आप लेखन में कथ्य को महत्त्व देती हैं अथवा शिल्प को ?

सिम्मी- मेरा ध्यान कथ्य पर रहता है क्योंकि मुझे लगता है कि इसी से कहानी पठनीय होती है। शिल्प की ओर मेरा ध्यान अधिक नहीं जाता है। जैसे-जैसे मन में भावनाएँ उमड़ती जाती हैं, कहानी आकार लेती जाती है। पंजाबी होने के बावजूद हिन्दी में लिखना मुझे सन्तुष्टि देता है।

वैशाली- आपकी रचनाओं में बाल मनोविज्ञान से संबंधित दो अद्भुत कथाएँ हैं -1. अनिमंत्रित और 2. 'काजू' कहानी इनके लेखन की प्रेरणा आपको कहाँ से मिली ?

सिम्मी- मैं विद्यालयीन शिक्षिका थी। वर्षों एक विद्यालय में पढ़ाया। वहीं बाल मनोविज्ञान से परिचित होने का अवसर मिला। मेरी कहानियों के पात्र मेरे इर्दगिर्द ही रहे हैं, जिन्हें अपनी आवश्यकतानुसार गढ़कर मैंने उन्हें रचनाओं का अंग बना लिया है। बच्चों को पढ़ाने और निरंतर उनके सान्निध्य में रहने के कारण उनकी मानसिकता को समझने में मुझे बहुत मदद मिली।

वैशाली- स्त्री-संघर्ष के बारे में आपके क्या विचार हैं ?

सिम्मी- स्त्री अपने अस्तित्व की पहचान के लिए अनंतकाल से संघर्ष करती आ रही है। मेरी समझ से उसका यह संघर्ष आजीवन चलता रहेगा। इस वैश्वीकरण के दौर में भी चाहे स्त्रियाँ कितनी भी ऊँचाइयों की

सीढियाँ पार कर चुकी हों पर पितृसत्तात्मक समाज में व्याप्त विद्रुपताओं के ढाँचों को पूरी तरह से तोड़ पाना संभव नहीं है। पुरुष समाज स्त्री को देह मात्र समझता है। अपनी देह से परे अपना अस्तित्व स्थापित करना मेरी दृष्टि में स्त्री-संघर्ष है।

वैशाली- प्रेम संबंधी कहानियों में आपकी स्त्री पात्र मानसिक संघर्षों से जूझती हुई नज़र आती हैं। पर वे अपने प्रेम को पाने में विफल रहती हैं ऐसा क्यों ?

सिम्मी- मेरी कहानी-‘बंद कमरे में आभास’, ‘परिधि’, ‘उसका मन’ और ‘ठहरी हुई बूँदें’ की नायिकाएँ अपनी परिस्थितियों का शिकार हैं। ऐसी परिस्थितियाँ यथार्थ रूप में मध्यवर्गीय परिवार में अधिक दृष्टिगोचर होती हैं। भारतीय समाज प्रेम विवाह को खुले रूप में स्वीकृति देने से आज भी हिचकिचाता है। हमारी परम्पराएँ, रूढ़ियाँ व मान्यताएँ ऐसे नियमों के तहत स्त्रियों को बाँध देती हैं कि अगर वे इससे इतर कुछ सोचती भी हैं तो उन्हें अपना जीवन तिरोहित करना पड़ता है। यह मध्यमवर्ग में एक कड़वी सच्चाई है।

वैशाली- आपकी कहानियों के पात्र संघर्ष से घिरे हुए तथा कुंठाग्रस्त क्यों हैं ?

सिम्मी- मेरी कहानियों के पात्र संघर्ष से घिरे व कुंठाग्रस्त हैं, इसका मुख्य कारण उनका मानसिक द्वंद्व है। यही द्वंद्व उन्हें संघर्षमय या कुंठाग्रस्त बनाता है। मेरी कहानी ‘कब्रगाथा’ इसका जीता जागता उदाहरण है। रीतिका की कुंठा ही उसे परिस्थिति से संघर्ष की प्रेरणा देती है। उसे ‘रोपित शिशु’ के रूप में संतान की प्राप्ति हो जाती है। जिसके लिए वह अपनी ससुराल में वर्षों से जूझ रही होती है।

वैशाली- ‘जलतरंग’ आत्मकथा है या उपन्यास ?

सिम्मी- मैंने इसे उपन्यास के रूप में प्रस्तुत किया है। इसमें कुछ भी काल्पनिक नहीं है। मैंने जीवनपर्यन्त अपने सान्निध्य में आए दूर-पास के सभी परिचित-अपरिचित लोगों, नाते-रिश्तेदारों पर ही लिखा। फिर सोचा, क्यों न अपनी भी खबर ली जाए; जिसकी हम अनदेखी करते रहते हैं। अपने भीतर के अँधेरों-उजालों को, अपने मौन में छिपी चीत्कार को, चेहरे पर छाई शान्ति और आत्मा में जलती आग को, बाहर की हार और अन्दर की जीत को भी अपनी कलम से सहेजा जाए। कई वर्षों तक इसकी ज़मीन तैयार करती रही। फिर इसे लिखने में पूरे सात वर्ष लग गए। वर्ष 2013 के ‘कुसुमांजलि साहित्य सम्मान’ से विभूषित यह उपन्यास मेरे जीवन का ‘विजय पर्व’ है ‘मुक्ति-पर्व’ है।

मैंने कई साक्षात्कारों में कहा है-‘जलतरंग’ लिखना मेरा सपना, मेरी अन्तिम इच्छा रही है; जो सात वर्षों में साकार हुई है और मुझे आन्तरिक दबावों से मुक्ति मिली है। ‘जलतरंग’ का एक-एक शब्द, घटना, सपने-जीवन का भोगा हुआ यथार्थ है।

वैशाली- क्या कुछ ऐसा भी है, जो सात वर्षों के परिश्रम के बावजूद इस उपन्यास में आने से रह गया है ?

सिम्मी- मैंने अविभाजित भारत में जन्म लिया पर भारत-विभाजन का दौर भी देखा, आतंकवाद का क्रहर भी। पंजाब, बिहार, उत्तरप्रदेश, दिल्ली आदि स्थानों पर रहते हुए क्षेत्रवाद की संकीर्ण मानसिकता से भी मेरा सामना हुआ। शिक्षक की भूमिका में शिक्षा-जगत् की विसंगतियों को जानने-समझने के अवसर भी मिले। अँग्रेज़ी के वर्चस्व और हिन्दी के दुर्भाग्य ने भी मेरे मर्म को कहीं गहरे आहत किया। शिक्षा व्यवस्था की

कमियों, शिक्षकों के द्वारा लड़कियों के साथ अभद्र व्यवहार, यौन उत्पीड़न की घटनाओं और दहेज-प्रथा के भयावह दुष्परिणाम जैसे कई प्रसंगों ने मन में ऐसी हलचल मचा दी कि इनके भुक्तभोगियों का दर्द मेरा दर्द हो गया।

मैंने एक व्यापक कैनवास पर इस उपन्यास में समाज और जीवन के विभिन्न चित्र अंकित किये हैं। हम सभी सपने देखते हैं और सपनों में कभी-कभी जीवन में होने वाली घटनाओं का पूर्व संकेत आभासित होता है, यहाँ तक कि पराशक्ति को भी चकित कर देने वाला बोध भी होता है। मैं हैरान हो जाती हूँ ऐसे सपनों पर। भविष्य को इंगित करने वाले ऐसे कई महत्वपूर्ण सपने हैं मेरे पास, जिनका 'जलतरंग' में समायोजन नहीं कर पायी। मेरा मानना है कि बहुत कुछ कह देने के बाद भी 'कुछ' तो रह ही जाता है। फिर भी मैंने इस उपन्यास में वह सब लिख देने की कोशिश की है, जो मैं लिखना चाहती थी।

वैशाली- 'जलतरंग' उपन्यास में जो भी विवरण आए हैं उनमें आपके जन्मस्थान रावलपिण्डी स्थित ग्राम देवी से लेकर दानापुर, कोहट, आगरा, बरेली, दिल्ली-जहाँ-जहाँ भी आप माता-पिता-परिवार के साथ रहीं; आपकी शिक्षा-दीक्षा हुई, यहाँ तक कि आपका अध्यापकीय जीवन भी प्रतिबिम्बित होता है। फिर इसे आत्मकथा कहने-मानने से परहेज़ क्यों ?

सिम्मी- मैंने 'जलतरंग' को उपन्यास-रूप में ही लिखा है और इसमें सच को सच की तरह ही कहा है। मेरा लक्ष्य कुछ आधारभूत मुद्दे उठाना था-जिन्हें लोग मामूली समझते हैं, मगर असल में वे दमघोंटू होते हैं। मैं सच्चे नामों के फेर में नहीं पड़ी। वर्ष 2001 में जब 'जलतरंग' लिखना आरम्भ किया था तो अपने कथ्य के लिए मुझे उपन्यास विधा ही उपयुक्त प्रतीत हुई, जिसमें तटस्थ रहकर, निडरतापूर्वक प्रभावशाली ढंग से, बिना 'मैं-मैं' का आत्मराग अलापे सब कुछ व्यक्त किया जा सकता था। आत्मकथाएँ पढ़ना मुझे अच्छा लगता है पर इसके लेखन में मेरी रुचि नहीं है। इसलिए यह 'उपन्यास' आप स्वीकार करें।

वैशाली- आपकी रचनाओं में मूल कथा से सर्वथा असम्बद्ध प्रतीत होते ऐसे पृष्ठ भी आते हैं, जो पाठक के मन में उलझन और कभी-कभी खीझ भी पैदा करते हैं। उदाहरणार्थ 'रंगशाला' के चौथे भाग के अन्त में राधिका के मन का अपराध-बोध उजागर हुआ है। इसके बाद के चार पृष्ठ अपने 'क़सीदाबादी दूरभाष भाई' और दिल्लीवासी 'दूरभाष भाई' के बीच परस्पर संवाद को समर्पित कर दिए हैं। क्या इसे आपकी प्रयोगधर्मिता माना जाए ?

सिम्मी- लिखते समय कभी-कभी कथा-रस के इतर भी ध्यान रखना ज़रूरी होता है। एकरसता भंग करने के अलावा वैविध्य और चमत्कार-प्रदर्शन की दृष्टि से भी ऐसा हो सकता है। मैं मौज में आकर भी कभी-कभी ऐसा कुछ लिख जाती हूँ। पर कथा तो ज़हन में रहती ही है।

वैशाली- क्या आपने अपनी रचनाओं के माध्यम से कोई सन्देश देना चाहा है ?

सिम्मी- मेरी हर रचना में अलग-अलग स्थितियों, समस्याओं और मानसिकता को उजागर करने की चेष्टा की गई है। मैंने भिन्न-भिन्न भावबोध की कहानियाँ लिखी हैं और पात्रों के माध्यम से ही सारी बातें कही गई हैं।

आप उसे रचना का उद्देश्य मान लें-चाहे रचना का सन्देश। कभी ये सन्देश स्पष्ट मुखर होते हैं और कभी नहीं भी होते। 'विस्थापित सदी' कहानी को याद कीजिए....। लड़की की माँ के अन्त के सारे संवाद समाज को स्पष्ट शब्दों में सन्देश देते प्रतीत होते हैं- "जीवन में किसी भी तरह की बनावट नहीं, सहजता सर्वोपरि है- उसी में सुख-शान्ति और शक्ति है। मैं चाहती हूँ, तुम सहज जीवन जियो-अपने को सारी ज़िन्दगी के लिए एक हादसे का अजायबघर मत बनाओ। एक-दूसरे के प्रति डर और उसके नीचे छिपे घृणा और अविश्वास के बीज को सदा-सदा के लिए जीवित रखना क्या ठीक है ? यह छोटे-छोटे विषबीज ही समय पाकर विष-वृक्ष बनते हैं और भावी पीढ़ियों को खाने के लिए विष-फल देते हैं।"

ऐसे ही, मेरी अन्य कहानियों तथा उपन्यासों में भी आपको कुछ-न-कुछ अवश्य मिलेगा, भले ही मेरा लेखन सोद्देश्य न रहा हो। पर कहते हैं न-जिन खोजा, तिन पाइयाँ।

वैशाली- एक प्रश्न 'पंचकोण' उपन्यास की मधु के चरित्र से सम्बन्धित है। आजीविका के लिए गाँव से महानगर की ओर पलायन करने वालों का गार्हस्थ्य और यौन जीवन बहुत संघर्षमय होता है। एक कमरे में निर्वाह करने की विवशता उनके यौन-जीवन को दुष्प्रभावित कर गंभीर समस्याएँ उत्पन्न कर देती हैं। लेकिन मधु और जानी के बीच जिस तरह के यौन सम्बन्धों का चित्रण आपने किया है, वह अस्वाभाविक लगता है क्योंकि मुसलमान परिवारों में भी परम्परावादी लोग अधिक होते हैं। विवाह से पूर्व गर्भधारण और बाक्रायदा पुत्र-जन्म का दुःसाहस करने वाली उच्छृंखल मधु का चरित्र कल्पनातीत है। आपका क्या मत है ?

सिम्मी- उच्छृंखलता या व्यभिचार को किसी धर्म अथवा जाति से जोड़कर देखना उचित नहीं है। किसी भी जाति-धर्म या समाज में मधु जैसी स्त्री अस्तित्व में हो सकती है। परम्परावादी परिवार या समाज में उन्मुक्त यौनाचार स्वीकार्य नहीं है, परन्तु परम्परा को बन्धन मानकर उसके विरुद्ध आचरण करने वाले अब हमें चकित नहीं करते। निम्नवर्गीय रूढ़ीवादी परिवार भी अब पेट की आग बुझाने के लिए नैतिकता के मानदण्डों से परे कोई भी कदम बेझिझक उठा लेते हैं। नैतिकता, मर्यादा, परम्परा आदि की चिन्ता संस्कारित व्यक्ति को होती है, कामान्ध स्त्री-पुरुष को नहीं। इसलिए इक्कीसवीं सदी की मधु का आचरण कल्पनातीत नहीं है।

वैशाली- आपने अपनी कृतियों में पात्रों के नाम बहुत अजीबोगरीब रखे हैं। जैसे कहानी 'बनजारन हवा' में लड़कियों के लिए 'लूडो', 'ताश', 'कैरम', 'शतरंज' जैसे नामकरण। 'रंगशाला' में 'चुपैया भाभी', 'कंटकैया भाभी' जैसे लाक्षणिक शब्दावली के सम्बोधन आदि। आखिर क्यों ?

सिम्मी- रचना को नीरस होने से बचाने के लिए; साथ ही थोड़े हास्य और मनोरंजन का समावेश कर रचना को सहज रूप देने के लिए भी।

वैशाली- अब बात आपकी कहानियों और उपन्यासों की भाषा की। चूंकि आप एक पंजाबी सिक्ख परिवार से आती हैं तो आपकी रचनाओं में पंजाबी शब्दों का प्रयोग बिलकुल स्वाभाविक है। मगर आप ऐसे-ऐसे अनगढ़ और सर्वथा अचर्चित-अप्रचलित शब्दों का प्रयोग करती हैं, जो दुर्बोध हैं। इसका क्या कारण है ?

सिम्मी- मैं पंजाबी हूँ लेकिन मैंने हिन्दी की शिक्षा प्राप्त की। हिन्दी में एम0ए0 की पढाई की और हिन्दी में ही लिखने की हिमाकत की। लेकिन मैंने बहुत आलंकारिक या परिनिष्ठित भाषा का उपयोग नहीं किया है। ठेठ पंजाबी शब्दों के सहज रूप से जो शब्द मेरे चिन्तन और लेखन की धारा में प्रवाहित होते चले आए, उसे मैंने उसी रूप में रचना में टाँक दिया। उसे संशोधित करने, माँजने-निखारने-सँवारने की क़वायद नहीं की। बहुत से शब्दों की सर्जक शायद मैं ही हूँ। मेरी भाषिक संरचना पात्रों को अधिक सहज स्वाभाविक तथा प्रामाणिक बनाती है।

पंजाब की मिट्टी के अनेक रंगों और खुशबू वाले मेरे उपन्यासों में पंजाबी नाम, शब्द, सम्बोधन, मुहावरे, प्रार्थना गीत भरे पड़े हैं। भाषा मेरे लिये विचारों की अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम ही नहीं बल्कि रचना को सही अर्थ तक पहुँचाने वाला साधन भी है। किसी भी विधा की रचना में भाषा ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है क्योंकि वही कथ्य को सान देती है और भावों को सम्प्रेषणीय बनाती है। मैंने विभिन्न राज्यों में समय बिताया है, वहाँ की मिट्टी और आबोहवा का असर भी मेरी लेखनी में है। विभिन्न भाषाओं के शब्दों का उपयोग आपको मेरी रचनाओं में मिलेगा। मानक, अमानक, तत्सम, तद्भव, देशज, अँग्रेज़ी, फ़ारसी, संकर (मिश्रित) और सर्वथा अप्रचलित अनगढ़ शब्द तक। लेकिन इसका उपयोग कथा-रस में कभी बाधक नहीं बनता।

वैशाली- सिम्मी जी, पुरस्कार और सम्मान की कितनी अहमियत होती है रचनाकारों के जीवन में ? अपनी उपलब्धियों के बारे में बतायें।

सिम्मी- वर्ष 1997 के श्रेष्ठ 'कथा साहित्य' के लिए मेरे कथा संग्रह 'तैंतीस कहानियाँ' को पंजाबी भाषा विभाग द्वारा पुरस्कृत किया गया। वर्ष 2006 में हिन्दी साहित्य अकादमी दिल्ली द्वारा 'साहित्यकार सम्मान' दिया गया। वर्ष 2006 में ही उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा 'सौहार्द्र सम्मान' प्रदान किया गया। कुसुमांजलि फाउण्डेशन द्वारा वर्ष 2012 में स्थापित 'कुसुमांजलि साहित्य सम्मान' वर्ष 2014 के लिए मेरे उपन्यास 'जलतरंग' को दिया गया। 'जलतरंग' को मिले इस सम्मान से मेरे सात वर्षों के श्रम की सार्थकता प्रमाणित हुई।

'जलतरंग' की पंक्तियाँ मुझे याद आ रही हैं - "मैं दुनिया के पास नहीं जा सकती, उसे प्रभावित नहीं कर सकती। उसे ही मेरे पास आना होगा। पर मैंने दुनिया के हित के लिए ऐसा क्या किया है, जो वह मेरे पास आये? काश! मैं कोई ऐसी कृति रच पाऊँ जो किसी पुरस्कार की मोहताज़ न हो और जो अपने-आप में ही विधाता का दिया महान् उपहार हो। दुनिया पढ़े-सुने और कहे-‘वाह!’ जो अपने-आप में बड़ी होकर मुझ लघु को बड़ा बना दे।"

मैं सम्मानों और पुरस्कारों की दौड़ में कभी नहीं रही, जो मिला-उसके लिए ऊपर वाले का शुक्रिया अदा करती हूँ। रही उपलब्धियों की बात, तो मेरे उपन्यास 'यातना शिविर' का 'तसीहे घर' शीर्षक से पंजाबी में अनुवाद डॉ. अमिया ने किया। जिसे पंजाबी राइटर्स को-ऑपरेटिव सोसायटी, नई दिल्ली द्वारा वर्ष 2007 में प्रकाशित किया गया। इसी तरह 'सम्बन्धों के किनारे' उपन्यास का पंजाबी में 'सम्बन्धा दे कंडे-

कंडे' शीर्षक से अनुवाद जसविन्दर कौर ने किया। पंजाब दूरदर्शन द्वारा मेरी कहानी 'उस फूल का नाम' पर टेलीफ़िल्म का निर्माण किया गया। वर्ष 1983 में थाईलैण्ड के बैंकाक शहर में जो विश्व पंजाबी लेखक सम्मेलन हुआ था, उसमें भागीदारी का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था।

पुरस्कारों की अहमियत के बारे में यही कहूँगी कि पुरस्कार से लेखक को सामाजिक स्वीकृति और सच्ची खुशी मिलती है। पुरस्कृत रचनाकार को नये पाठक और प्रशंसक मिलते हैं जिनसे उत्साहवर्धन होता है। पुरस्कारों का आर्थिक महत्त्व भी कम नहीं है। अर्थाभावग्रस्त लेखक के लिए पुरस्कार नयी ऊर्जा देने वाले साबित होते हैं; बड़ा पुरस्कार लेखक को रातोंरात 'बड़ा लेखक' बनाकर उसकी बड़ी सफलता के लिए संभावनाओं के द्वार खोल देता है।

वैशाली- आपने अध्यापन और लेखन को समर्पित जीवन जिया। कोई महत्वाकांक्षा उम्र के इस पड़ाव पर ?

सिम्मी- जब तक ज़िन्दगी है, साँसों के साथ कलम भी चलती रहे। शब्दों के साथ जीने का सुख मिलता रहे!
